शासन प्रभावक वज्रस्वामीजी

बाल शिशु का रुदन

शिशु का अर्पण

श्रवण मात्र से ग्यारह अंग कंठस्थ

बाल वज्र का नृत्य

(पृष्ट नं. 44)

जन्म–वीर संवत् 496
दीक्षा–वीर संवत् 504

उम्र–88 वर्ष
स्वर्गवास–वीर संवत् 584
विक्रम संवत् 114

युगप्रधान वज्रस्वामीजी

स्तुति

आजन्म वैरागी अनुपमज्ञानी दशपूरवधरा,
प्रतिबोधकर रुक्मणि के, गिरिराज के उद्धारका,
श्री वज्रस्वामीजी करे, तब वैरीशाखा स्थापना,
प्रभुवीर पाट परम्परा को, भाव से करूं वंदना ।।17।।

भगवान महावीर की पाट परंपरा में 13 वें पट्टधर के रूप में **पू. आचार्य सिंहगिरिसूरिजी** के पट्टधर **युगप्रधान पू. वज्रस्वामी** हुए । उनका जन्म वीर संवत् 496 में, दीक्षा वीर संवत् 504 में युगप्रधान पद वीर संवत् 548 में तथा स्वर्गवास वि.सं. 584 में हुआ था ।

अवंती देश !

तुंबवन नगर !!

उस नगर में **धन** श्रेष्ठी रहता था । वह अत्यंत ही न्यायप्रिय और पापभीरु था । उस धन श्रेष्ठी को धनगिरि नाम का इकलौता बेटा था । पूर्वभव की आराधना और सुसंस्कारों के फलस्वरूप बाल्यकाल से ही धनगिरि के मन में संसार के प्रति विरक्ति का भाव था ।

यौवन में काम-उन्माद की अधिक संभावना रहती है । बिहावने जंगलों को निर्भयता से पार करने में समर्थ नवयुवक भी यौवन के वन में जहाँ-तहाँ भटक जाता है । परन्तु विरल आत्माएँ ऐसी होती हैं जो यौवन के प्रांगण में प्रवेश करने पर भी यौवन का उन्माद उनके अन्तर्मन को छू नहीं पाता है ।

काजल से भरी कोठरी में प्रवेश करने के बाद बेदाग बाहर निकलना कठिन है, उसी प्रकार यौवन के प्रांगण में प्रवेश करने के बाद भोग सुखों से अलिप्त रहना, अत्यंत कठिन है ।

धनगिरि अलग ही माटी का इंसान था। उसके दिल में भौतिक सुखों का लेश भी आकर्षण नहीं था...उसे वैषयिक सुख अत्यंत ही तुच्छ प्रतीत होते थे।

उसी नगरी में **धनपाल** नाम का सेठ रहता था। उसके **आर्यसमित** नाम का पुत्र और **सुनंदा** नाम की पुत्री थी। यौवन के प्रांगण में प्रवेश करने के साथ ही चंद्रमा की सोलह कलाओं की भाँति सुनन्दा का रूप सौंदर्य एकदम खिल उठा था।

सुनंदा ने धनगिरि के बाह्य सौंदर्य को देखा और उसे अपने दिल में बसा लिया। उसने मनोमन धनगिरि के साथ शादी करने का संकल्प किया।

सुनंदा धनगिरि को दिल से चाहती थी, परन्तु धनगिरि के मन में सुनंदा के प्रति कुछ भी आकर्षण नहीं था। उसके मन तो रूपवती नारी एक मात्र हाड़-मांस की पुतली ही थी।

आखिर, नारी देह में है क्या ? साक्षात् रति की अवतार समान लगती विश्व-सुंदरी के देह पर से चमड़ी हटा दी जाये...तो उस ओर नजर डालने का भी मन नहीं होगा। कितना बीभत्स है यह देह ! जिसके भीतर हाड़-मांस-खून-चर्बी-मल-मूत्र आदि ही रहा हुआ है।

धनगिरि के दिल में नारीदेह का थोड़ा भी आकर्षण नहीं था। उसका मन मुक्ति-वधू को पाने के लिए लालायित था। जिस संयम की साधना से मुक्ति-वधू का संगम हो सके, उसे पाने के लिए वह अत्यंत ही आतुर था।

दीक्षा की प्रबल भावना होने पर भी पारिवारिक दबाव के आगे धनगिरि को झुकना पड़ा। अनिच्छा से भी उसे सुनंदा के साथ लग्न-ग्रंथि से जुड़ना पड़ा।

लग्न जीवन की स्वीकृति के बाद भी उसके दिल में संयम का आकर्षण पूर्ववत् बना हुआ था। वह संयम ग्रहण के लिए सानुकूल संयोगों की प्राप्ति की प्रतीक्षा कर रहा था। कुछ समय व्यतीत हुआ...और सुनंदा गर्भवती बनी।

अष्टापद महातीर्थ की यात्रा करते समय गौतम स्वामी भगवान ने जिस तिर्यक् जृंभक देव को प्रतिबोध दिया था...उस देव का आयुष्य पूरा हो गया। देवायु की समाप्ति के साथ ही उस देव का सुनंदा की कुक्षि में अवतरण हुआ। गर्भ में एक महान् आत्मा का अवतरण होने से सुनंदा ने एक सुंदर स्वप्न देखा। उसका देह खुशी से रोमांचित हो उठा...उसका हृदय प्रसन्नता से भर आया।

एक महान् आत्मा का गर्भ में अवतरण होता है तब चारों ओर वातावरण में प्रसन्नता छा जाती है।

धनगिरि ने सोचा, "सुनंदा पुत्र के सहारे अपना जीवन निर्वाह आसानी से कर सकेगी" इस प्रकार विचार कर उसने सुनंदा को कहा, "प्रिये ! मेरा मन तो पहले से ही संयम लक्ष्मी को पाने के लिए अत्यंत उत्सुक था...यह बात मैंने पहले से ही स्पष्ट कर दी थी...अब तू गर्भवती बन चुकी है, भविष्य में तेरा पुत्र तुझे सहायक बन सकेगा। अतः तू मुझे दीक्षा के लिए अनुमति दे।"

यद्यपि सुनंदा के लिए पति के प्रेमपाश के बंधन को तोड़ना अत्यंत कठिन था...परन्तु धनगिरि ने लग्न-जीवन की स्वीकृति के पहले ही यह बात स्पष्ट कर दी थी...अतः उसको बोलने के लिए कोई अवकाश नहीं था। अनिच्छा होते हुए भी उसे मूक सहमति प्रदान करनी पड़ी।

...बस, सहमति मिलते ही धनगिरि, सिंहगिरि मुनि के पास पहुँच गया। जर्जरित धागे की भाँति मोहपाश के बंधन को तोड़कर उसने भागवती दीक्षा स्वीकार कर ली। सुनंदा के भाई आर्यसमित ने भी सिंहगिरि के पास जाकर दीक्षा ले ली !

वह युग था परमार्थ का, छोटे-छोटे निमित्तों को पाकर अथवा जिनवाणी का अमृत पान करने वाले नव युवा भी भौतिक सुखों को तिलांजलि देकर चारित्र धर्म को स्वीकार करने के लिए कटिबद्ध हो जाते थे।

सुनंदा सुखपूर्वक अपना गर्भ वहन करने लगी। गर्भस्थ शिशु को किसी प्रकार की पीड़ा न पहुँचे...उसका वह पूरा-पूरा ध्यान रखने लगी। समय व्यतीत हुआ...और एक शुभ दिन सुनंदा ने अत्यंत ही तेजस्वी पुत्र-रत्न को जन्म दिया। सुनंदा के आनंद का पार न रहा। **सुनंदा की सखियों ने उसे पुत्र-जन्म की बधाई दी।**

खुशहाली के माहौल में किसी सखी ने बात करते हुए कहा, "अरे ! इस बच्चे के पिता ने दीक्षा नहीं ली होती तो यह पुत्र-जन्मोत्सव और भी अच्छा होता।"

नवजात शिशु के कान में ये शब्द गये और इन शब्दों ने उसके मन पर जादुई असर किया। इन शब्दों के श्रवण के साथ ही उसकी अन्तश्चेतना जागृत हो उठी।

पूर्व के देवभव में गणधर गौतमस्वामी के मुखारविंद से पुंडरीक-कंडरीक अध्ययन के माध्यम से जिस मोक्षमार्ग का श्रवण किया था...उनके संस्कारों के फलस्वरूप नवजात शिशु के हृदय में वैराग्य भाव का बीजारोपण हो गया। उसके परिणामस्वरूप वह चारित्र धर्म अंगीकार करने के लिए उत्सुक हो गया। वह बालक मन-ही-मन सोचने लगा, "अहो ! मेरा परम सौभाग्य है कि मेरे पिता ने भागवती दीक्षा स्वीकार की है। संयम के बिना इस संसार से आत्मा का निस्तार नहीं है...अतः मुझे भी यह संयम अवश्य स्वीकार करना चाहिए।...परन्तु मैं अपनी माँ की इकलौती संतान होने के कारण वह मुझे अनुमति कैसे देगी ?"

वह छोटा सा बालक चारित्र धर्म की स्वीकृति के लिए अपनी माँ की अनुमति पाने का उपाय सोचने लगा। आखिर सोचते-सोचते उसे एक उपाय हाथ लग गया।

"माँ को मुझसे कंटाला आ जाय तो वह मुझे दीक्षा के लिए अनुमति प्रदान कर सकेगी" इस प्रकार विचार कर उस नवजात शिशु ने माँ को कंटाला पैदा कराने के लिए निष्कारण ही जोर से रोना चालू किया। नवजात शिशु के रुदन को जानकर माँ ने उसे चुप करने के लिए अनेक उपाय किए...परन्तु यह कोई वेदना-जन्य रुदन नहीं था...यहाँ तो रोने का मात्र बहाना था।

यदि सकारण रुदन होता तो योग्य समाधान द्वारा उसे रोका जा सकता था। सोये हुए को जगाया जा सकता है परन्तु जो सोने का बहाना कर रहा हो, उसे जगाना शक्य नहीं है।

नवजात शिशु के रुदन के पीछे कोई शारीरिक पीड़ा थी नहीं...अतः सुनंदा ज्यों-ज्यों उस शिशु को शांत करने का प्रयास करती, त्यों-त्यों वह शिशु और अधिक रुदन करता। इस प्रकार सतत रुदन के द्वारा वह न तो माता को खाने देता...और न सोने देता। सुनंदा किसी भी काम से जुड़ी होती, उसी समय वह बालक जोर-जोर से रुदन कर माँ के कार्य में विक्षेप डालने की कोशिश करता। बालक के सतत रुदन के कारण माँ सुनंदा हैरान-परेशान हो गई।

इस प्रकार छह मास का दीर्घ समय व्यतीत हो गया...और आचार्य सिंहगिरि अपने परिवार के साथ तुंबवन नगर में पधारे। नगरवासियों ने गुरुदेव का भावभीना स्वागत किया। गोचरी के समय जब धनगिरि मुनि गोचरी के लिए जाने लगे, तब किसी पक्षी के कलरव को सुनकर गुरुदेव ने धनगिरि मुनिवर को कहा, ***"हे मुनिवर ! आज गोचरी में सचित्त या अचित्त जो भी भिक्षा मिले, उसे ग्रहण कर लेना।"***

धनगिरि मुनि ने गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य की। यद्यपि जैन मुनि अपनी भिक्षा में अचित्त व कल्प्य पदार्थ ही बहोरते हैं, फिर भी गुरुदेव ने जब सचित्त या अचित्त कुछ भी लेने को कहा...उस समय धनगिरि मुनि ने किसी प्रकार का तर्क नहीं किया। वे जानते थे कि **गीतार्थ गुरुदेव जो कुछ भी आज्ञा देते हैं, उसके पीछे परमार्थ की भावना रही होती है।**

अपने गुरुदेव की आज्ञा को शिरोधार्य कर धनगिरि मुनिवर, आर्यसमित मुनि के साथ गोचरी के लिए नगर में निकल पड़े।...भिक्षा के लिए आगे बढ़ते हुए वे सुनंदा के भवन में आ गए...और उन्होंने जोर से **'धर्मलाभ'** कहा।

'धर्मलाभ' की ध्वनि सुनते ही सुनंदा की सखियाँ भी वहाँ आ गईं।

सुनंदा ने कहा, "मैं इस पुत्र के रुदन के कारण अत्यंत कंटाल गई हूँ...अतः आप इसे ग्रहण करें। आपके पास रहकर यह सुखी रहता हो तो उससे मुझे खुशी होगी।"

धनगिरि ने कहा, **"इस पुत्र को ग्रहण करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है...परन्तु स्त्रियों के वचन का कोई भरोसा नहीं है। वे जो आज बोलती हैं...कल वापस बदल जाती हैं अतः इस विवाद का अंत लाने के लिए किसी को गवाही करना जरूरी है।"**

उसी समय सुनंदा ने कहा, "ये आर्यसमित मुनि और ये मेरी सखियाँ साक्षी रहेंगे।"

सुनंदा की यह बात सुनकर धनगिरि मुनि ने अपनी झोली फैलाई और उसी समय सुनंदा ने अपना छह महीने का पुत्र धनगिरि की झोली में डाल दिया।

धनगिरि ने सोचा, "अहो ! गुरुदेव कितने ज्ञानी हैं ! सचित्त भिक्षा के लिए जो सम्मति दी, उसका यही रहस्य था कि आज भिक्षा में इस बालक की प्राप्ति होगी।"

धनगिरि मुनि अपनी झोली में बालक को उठाकर अपने गुरुदेव के पास पधारे। बालक के अतिभार को वहन करने के कारण धनगिरि मुनि का हाथ, एकदम नम चुका था...भारी वजन को उठाकर आए धनगिरि को देखते ही सिंहगिरि आचार्य सम्मुख गए और उन्होंने अपने दोनों हाथों से उस झोली को उठा ली। झोली के अतिभार को देखकर गुरुदेव बोले, **"अहो ! यह वज्र की भाँति क्या लाये हो ?"**

उसी समय सिंहगिरि ने अपने आसन पर से उस बालक को देखा...गुरुदेव के मुख से निकले **'वज्र'** शब्द के कारण उस बालक का नाम **'वज्र'** रखा गया।

सिंहगिरि ने वह बालक साध्वीजी भगवंत को सौंप दिया। साध्वीजी भगवंत के उपाश्रय में श्राविकाएँ उस बालक का अच्छी तरह लालन-पालन करने लगीं। वे श्राविकाएँ अत्यंत ही प्रेम और वात्सल्य से बालक की अच्छी तरह से संभाल लेने लगीं।

रात्रि के समय में जब साध्वीजी भगवंत ग्यारह अंगों का स्वाध्याय करतीं थीं...तब यह बालक **'वज्र'** साध्वीजी भगवंत के मुख से स्वाध्याय की उन गाथाओं को अत्यंत ही ध्यान पूर्वक सुनता था...पूर्व जन्म की आराधना और तीव्र ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के कारण, बालक वज्र को वे सारी गाथाएँ कंठस्थ हो जातीं। इस प्रकार मात्र तीन वर्ष की वय में ही बालक वज्र ग्यारह अंग के ज्ञाता बन गया।

सुनंदा की हार

संसार के संबंध स्वार्थ से भरे हुए हैं। सांसारिक संबंधों में हमें जहाँ-तहाँ स्वार्थ की बदबू दिखाई देती है।

सुनंदा को जब इस बात का पता चला कि उसका बालक साध्वीजी के उपाश्रय में रहा हुआ है और वह एकदम शांत हो चुका है, वह साध्वीजी के पास आ पहुँची और अपने बालक को ले जाने के लिए आग्रह करने लगी।

जिस सुनंदा ने रोते हुए बालक का स्वेच्छा से त्याग किया था...आज वही सुनंदा चुप हुए उस बालक वज्र को पुनः अपने अधिकार में लेने के लिए साध्वीजी म. के पास **आग्रह करने लगी।**

साध्वीजी भगवंत ने कहा, ''इस बालक पर हमारा कोई अधिकार नहीं है...यह तो गुरुदेव की अमानत है अतः पूज्य आचार्य गुरुदेव की अनुमति बिना यह बालक हम तुम्हें सौंप नहीं सकते हैं।''

कुछ समय बाद आर्य सिंहगिरि अपने परिवार के साथ पुनः उस नगर में पधारे। सुनंदा धनगिरि मुनि के पास पहुँची और अपने पुत्र को ले जाने के लिए आग्रह करने लगी।

धनगिरि ने समझाते हुए उसे कहा, ''यह बालक मैंने अपनी इच्छा या बलात्कार से ग्रहण नहीं किया है, अनेक की साक्षी में तुमने ही यह बालक मुझे सौंपा है...अतः इसे वापस लेने के लिए आग्रह नहीं करना चाहिए। **सज्जन पुरुषों का वचन तो पत्थर की लकीर की भाँति होता है।''**

बहुत कुछ समझाने के बाद भी सुनंदा ने अपना आग्रह नहीं छोड़ा। तत्पश्चात् संघ के अग्रणी श्रावकों ने उसे समझाने की कोशिश की...फिर भी वह नहीं मानी। वह अपनी जिद् पर अटल रही...इतना ही नहीं, अपने पुत्र को पाने के लिए वह राजदरबार में जा पहुँची। उसने जाकर राजा को शिकायत की।

सुनंदा की बात सुनकर राजा भी अचरज में पड़ गया। वह सोचने लगा, **'जैन साधु कभी भी अदत्त का ग्रहण नहीं करते हैं, तो इस घटना के पीछे रहे रहस्य को जानना चाहिए।'** सुनंदा की शिकायत के बाद धनगिरि आदि मुनियों ने भी जाकर राजा को वास्तविकता समझाई। राजा सोच में पड़ गये।

आखिर सोच-विचार कर राजा ने धनगिरि मुनि और सुनंदा को समाधान देते हुए कहा, ''कल तुम दोनों अपने परिवार के साथ राजसभा में उपस्थित रहना और इस बालक को भी उपस्थित रखना।''

बस, दूसरे दिन बालक वज्र के न्याय को पाने के लिए सुनंदा अपनी सहेलियों के साथ बालक के योग्य खिलौने व भोजन सामग्री लेकर राज-सभा में उपस्थित हो गई। धनगिरि मुनि भी दूसरे दिन अपने साथी मुनियों के साथ वहाँ उपस्थित हो गए।

दोनों पक्ष आमने-सामने बैठ गए। न्याय के लिए राजा बीच में बैठ गया। ठीक समय पर राजा ने न्याय करते हुए कहा, "बालक वज्र को सभा के बीच में उपस्थित किया जाय... यह जिस ओर जाना चाहे, उस ओर जा सकेगा।"

उसी समय सुनंदा ने कहा, "यह बालक इन साधुओं के साथ लंबे समय से परिचित है, अतः इसे पहले मैं बुलाऊंगी।"

राजा ने इस बात में अपनी सहमति प्रदान की। राजा की ओर से सहमति मिलते ही सुनंदा अपने पुत्र को आकर्षित करने के लिए मिठाई और खिलौने आदि बताने लगी... परन्तु वह वज्र उन खिलौनें तथा खाने-पीने की सामग्री से लेश भी आकर्षित नहीं हुआ।

सुनंदा ने कहा, "बेटा! तू मेरे पास आ जा। तेरे पिता तो दीक्षा लेकर मुझे छोड़कर चले गए है...अब तो तू ही मेरे लिए आधार-स्तम्भ है। बेटा! तेरे बिना भविष्य में मेरा कौन सहारा है? मैंने तुझे 9 मास तक गर्भ में वहन किया है, अतः तू मेरे पास आकर अपने ऋण के भार से मुक्त बन! मैं तेरे लिए खाने-पीने-खेलने की खूब सामग्री लेकर आई हूँ।"

माता के आग्रह भरे इन वचनों को सुनकर वज्र सोचने लगा, ***"अहो! लोक में माता-पिता को तीर्थरूप कहा गया है, यह बात सत्य है, किंतु वे तो इसी लोक में सुख देनेवाले हैं...परन्तु गुरू और संघ तो परलोक में भी सुखदायी हैं...और यह संघ तो तीर्थंकरों के लिए भी आदर पात्र है...अतः संघ की आराधना में माँ की आराधना का समावेश हो जाता है...भूतकाल में संसार में भटकती हुई इस आत्मा की अनंत माताएँ हो चुकी हैं। इस आत्मा ने समुद्र के जल से भी अधिक माँ का दूध पिया है...यह संघ तो मोक्षसुख प्रदान करने वाला है अतः इसकी आराधना करूंगा तो अल्पभवों में ही मेरी आत्मा का कल्याण हो सकेगा"***

इस प्रकार विचार कर बालक वज्र अपने स्थान पर ऐसे ही खड़ा रहा।

कुछ देर बाद धनगिरि मुनि ने रजोहरण बताते हुए कहा, "हे बालक वज्र! **यदि तू धर्म को भजना चाहता है तो कर्म रूपी रज को साफ करने में समर्थ इस रजोहरण को धारण कर। कर्म के बंधन से ग्रस्त जीव को अन्य सामग्री तो हर भव में सुलभ है किंतु कर्म का उच्छेद करने में समर्थ इस धर्म की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ है।"**

अपने उपकारी गुरु भगवंतों के इन वचनों को सुनकर बालक वज्र एकदम खुश हो गया।

उसी समय संघ ने रजोहरण और मुखवस्त्रिका रखते हुए कहा, "हे वज्र! यदि तुझे संयम ग्रहण करने की इच्छा हो तो इस रजोहरण को ग्रहण कर, अन्यथा माता ने जो वस्तुएँ प्रदान की हैं, उन्हें ग्रहण कर।"

वज्र ने सोचा, "माता की अपेक्षा श्रीसंघ मेरे लिए विशेष आदरणीय है।" इस प्रकार विचार कर उसने वह रजोहरण अपने हाथ में ले लिया और उसे मस्तक पर धारण कर नाचने लगा।

उसके बाद वह बालक वज्र पिता–मुनि की गोद में जाकर बैठ गया। उसी समय मंगल वाद्ययंत्रों की ध्वनि से आकाश-मंडल गूंज उठा।

राजा ने संघ व गुरुजनों का आदर सत्कार किया। सुनंदा ने सोचा, "अहो ! मेरा यह पुत्र दीक्षा ले लेगा। पहले भी मेरे भाई व पति ने दीक्षा अंगीकार की है, अतः अब मैं अकेली घर पर रहकर क्या करूंगी ? मैं भी उसी मार्ग को स्वीकार करती हूँ।" इस प्रकार विचार कर उसने भी सिंहगिरि आचार्य भगवंत के पास जाकर भागवती दीक्षा स्वीकार कर ली।

चारित्र प्रभाव

छह वर्ष की लघुवय में बालक वज्र को भागवती दीक्षा प्रदान की गई। क्रमशः वज्रमुनि आठ वर्ष के हुए।

एक बार वज्रमुनि को साथ में लेकर आचार्य भगवंत ने अवंती की ओर विहार प्रारंभ किया। विहार दरम्यान अचानक वर्षा होने लगी। उस समय सभी साधु यक्षमंडप में आ गए। उस समय वज्रमुनि के सत्त्व की परीक्षा करने के लिए उनके पूर्वभव का मित्र तिर्यक् जृंभक देव वहाँ पर आया और सार्थवाह का रूप धारण कर छावनी डालकर वहाँ पर रहा।

अप्काय व वायुकाय की विराधना के भय से वे साधु उस यक्ष मंडप में रहकर आराधना करने लगे। इसी बीच उस सार्थवाह ने आकर गुरुदेव को कहा, "हे प्रभो ! मुझ पर कृपा कर आप अपने साधु को भिक्षा के लिए हमारे तंबू में भेजें।"

गुरुदेव ने बाहर नजर की, तब पता चला कि वर्षा बंद हो चुकी है। आचार्य भगवंत ने वज्रमुनि को भिक्षा के लिए भेजा। उसी समय वज्रमुनि की परीक्षा के लिए उस देव ने सूक्ष्म जल बूंदों की वृष्टि प्रारंभ की। तत्काल वज्रमुनि वहीं पर रुक गए। कुछ देर बाद उस देव ने जलबिंदुओं का संहरण कर लिया। तत्पश्चात् वज्रमुनि तंबू में पधारे।

वज्रमुनि ने अपने श्रुतज्ञान का उपयोग लगाकर द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव का निरीक्षण किया और वे सोचने लगे, "***अहो ! इसके पैर भूमि को स्पर्श नहीं कर रहे हैं...इसके नेत्र भी स्थिर हैं तथा यह जो अन्न बहोरा रहा है, वह अन्न भी इस क्षेत्र में सुलभ नहीं है।***" इन बातों का विचार करते हुए वज्रमुनि ने निर्णय किया कि सचमुच यह तो **देव-पिंड** होना चाहिए और देव पिंड साधु के लिए **अकल्प्य** कहा गया है। इस प्रकार निर्णय कर वज्र मुनि ने कुछ भी बहोरने से इन्कार कर दिया।

बालक वज्रमुनि के इस उत्कृष्ट सत्त्व बल को देखकर वह देव प्रसन्न हो गया। उसने वज्रमुनि को **वैक्रियलब्धि** प्रदान की।

• दूसरी बार पुनः किसी देव ने वज्रमुनि की परीक्षा की। उस परीक्षा में उस देव ने वणिक् का रूप किया और घेबर का दान करने लगा...परन्तु वज्रमुनि पुनः उस वणिक् के देवस्वरूप को पहिचान गये।

वज्रमुनि ने वह देव-पिंड लेने से इन्कार कर दिया। परिणामस्वरूप उस देव ने वज्रमुनि को **आकाशगामिनी विद्या** प्रदान की।

ग्यारह अंगों के ज्ञाता

बाल्यवय में ही वज्रमुनि ग्यारह अंगों के ज्ञाता बने थे। परन्तु उन्होंने कभी भी अपने ज्ञान का प्रदर्शन नहीं किया। अन्य किसी भी मुनि को वज्रमुनि की विद्वत्ता का कोई परिचय नहीं था।... अतः जब वज्रमुनि प्राथमिक–प्रारंभिक सूत्रों के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान नहीं देते, तब स्थविर मुनि, वज्रमुनि को अध्ययन के लिए प्रेरणा देते। वे कहते, **''वज्रमुनि ! यह लघुवय अध्ययन की वय है। इस वय में अध्ययन करोगे तो तुम्हें विशेष लाभ होगा। इस वय में अध्ययन की उपेक्षा करना उचित नहीं है।''**

अन्य मुनियों को कहाँ पता था कि ये वज्रमुनि वय में बाल होते हुए भी श्रुत के पारगामी हैं। ... यद्यपि वज्रमुनि अत्यंत गंभीर थे, परंतु एक छोटी सी एक घटना ने गुरूदेव की भ्रांति दूर कर दी और उन्हें ख्याल आ गया कि वज्रमुनि तो महाज्ञानी है।

एक बार अन्य सभी मुनि गोचरी के लिए बाहर गये हुए थे। गुरूदेव सिंहगिरि स्थंडिल भूमि गये हुए थे। उस समय वसति (बस्ती) में वज्रमुनि अकेले थे।

कुतूहलवश वज्रमुनि ने सभी मुनियों की उपधि मंडलाकार स्थापित कर दी और स्वयं गुरू की भाँति (वाचनाचार्य बनकर) बीच में बैठकर ग्यारह अंग के गंभीर सूत्रों पर प्रभावशाली ढंग से वाचना देने लगे। थोड़ी देर बाद सिंहगिरि वसति के निकट आ गए। उन्हें दूर से वज्रमुनि की वाचना के शब्द सुनाई दिए।

वे सोचने लगे, ''अहो ! क्या सभी मुनि बाहर से आ गए हैं और वज्र उन्हें वाचना दे रहा है ?'' गुरूदेव ने बंद द्वार के छिद्र में से झाँककर देखा-उन्होंने अकेले वज्रमुनि को अंगगत पदार्थों पर वाचना देते हुए देखा। उन्हें अत्यंत ही आश्चर्य हुआ। ''अहो ! यह बाल मुनि ग्यारह अंगों का ज्ञाता है ? परन्तु आश्चर्य है कि अभी तक इसने अपने ज्ञान का कभी प्रदर्शन नहीं किया। अहो ! इसकी गंभीरता कितनी है ?''

''यदि मैं उपाश्रय में अचानक प्रवेश करूंगा तो यह शर्मिंदा हो जाएगा'' इस प्रकार विचार कर सिंहगिरि गुरूदेव ने द्वार पर आकर जोर से ''निसीहि-निसीहि-निसीहि'' कहा। अपने गुरुदेव के इन वचनों को सुनकर वज्र मुनि ने गुरूदेव के आगमन को पहिचान लिया। तत्क्षण उसने सारी उपधि नियत स्थान पर रख दी और वे तत्काल गुरूदेव के सम्मुख आकर गुरुदेव की चरणरज दूर करने लगे और उसके बाद गुरूदेव को योग्य आसन पर बिठाकर उनका पाद प्रक्षालन करने लगे।

ज्ञान के साथ ही वज्रमुनि की गंभीरता देखकर सिंहगिरि गुरूदेव अत्यंत प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् अन्य मुनियों को उनकी ज्ञान की गरिमा का ख्याल कराने के लिए अपने विनीत शिष्यों को बुलाकर कहा, ''मैं चार दिन के लिए आसपास के गाँवों में विहार करना चाहता हूँ।''

शिष्यों ने कहा, ''गुरूदेव ! हम भी आपके साथ चलेंगे।''

गुरूदेव ने कहा, ''आधा–कर्मी आदि गोचरी संबंधी दोषों की संभावना होने के कारण सभी का साथ चलना उचित नहीं है।''

शिष्यों ने कहा, "भगवंत ! तो फिर हमें वाचना कौन देगा ?"

गुरूदेव ने कहा, "यह वज्रमुनि तुम्हें वाचना देगा ।"

शिष्यों ने गुरूदेव के इस वचन को तत्काल **'तहत्ति'** कहकर स्वीकार लिया...परन्तु उन्होंने लेश भी तर्क नहीं किया कि यह बालक वज्र हमें क्या वाचना देगा ।

"अहो ! ज्ञानी गुरूदेव के वे शिष्य भी कितने विनीत और समर्पित होंगे । लेश भी तर्क-वितर्क किये बिना उन्होंने गुरूदेव के वचन को 'तहत्ति' कहकर स्वीकार कर लिया ।

सिंहगिरि गुरूदेव के विहार करने के बाद वे सभी मुनिवर बाल वज्रमुनि के पास ग्यारह अंग-गत सूत्रों की वाचना लेने लगे । वज्रमुनि अपनी वाक् प्रतिभा के द्वारा इस प्रकार सरल विधि से अंगगत पदार्थों को समझाने लगे कि अल्प बुद्धिवाले शिष्य भी अच्छी तरह से सूत्रों के रहस्यों को समझने लग गए ।

कुछ दिनों के बाद जब गुरूदेव लौटे, तब उन्होंने पूछा, "अध्ययन कैसा चल रहा है ?"

सभी मुनियों ने कहा, "आपकी कृपा से हमारा अध्ययन सुखपूर्वक चल रहा है । अब हमेशा के लिए वज्र मुनि ही हमारे लिए 'वाचनाचार्य' हो ।"

शिष्य मुनियों के इन शब्दों को सुनकर सिंहगिरि ने कहा, **"इसकी अद्‌भुत गुणगरिमा और ज्ञान को बतलाने के लिए ही मैंने यहाँ से विहार किया था ।"**

उसके बाद वज्रमुनि ने भी तपश्चर्यादि विधिपूर्वक गुरूदेव के पास से वाचना ग्रहण की और गुरूदेव के पास जितना ज्ञान था, वह ज्ञान ग्रहण कर लिया ।

महान् ज्ञानी

आर्य सिंहगिरि अपने परिवार के साथ विहार करते हुए आगे बढ़ रहे थे । इधर अवंती नगर में दशपूर्वधर महर्षि भद्रगुप्तसूरिजी म. बिराजमान थे । आर्य सिंहगिरि ने सोचा, "वज्रमुनि का क्षयोपशम अत्यंत तीव्र है, यह वज्र पूर्वों का अभ्यास करने में समर्थ है । तत्र बिराजमान भद्रगुप्तसूरिजी दशपूर्वों के ज्ञाता हैं । यह वज्र, भद्रगुप्तसूरिजी म. के पास ज्ञानार्जन कर सकता है ।" इस प्रकार विचार कर आर्य सिंहगिरि ने वज्रमुनि को भद्रगुप्तसूरिजी म. के पास जाकर पूर्वों का अभ्यास करने के लिए आज्ञा प्रदान की ।

गुर्वाज्ञा स्वीकार कर अन्य मुनियों के साथ वज्रमुनि ने अवंती की ओर अपनी विहार-यात्रा प्रारंभ की । क्रमशः आगे बढ़ते हुए वज्रमुनि उज्जयिनी नगरी के बाहर पहुँच गए ।

इधर प्रभात समय में आचार्य भद्रगुप्तसूरिजी म. अपने शिष्यों को कहने लगे, **"आज मैंने रात्रि में एक सुंदर स्वप्न देखा । मेरे हाथ में रहा दूध का पात्र कोई पी गया और उसने तृप्ति का अनुभव किया ।** इस स्वप्न के आधार पर मैं अनुमान करता हूँ कि आज किसी बुद्धिशाली साधु का आगमन होना चाहिए, जो मेरे पास में रहे दश पूर्वों का ज्ञान ग्रहण कर सकेगा । अहो ! आज किसी योग्य पात्र की प्राप्ति होगी और मेरे दश पूर्व का संग्रह सफल-सार्थक बनेगा ।"

आचार्य भगवंत अपने शिष्यों के साथ यह वार्तालाप कर रहे थे, तभी वज्रमुनि ने वसति में

प्रवेश किया । स्वप्न में दृष्ट आकृति-प्रकृति के अनुसार ही वज्रमुनि को देखकर भद्रगुप्तसूरिजी म. एकदम प्रसन्न हो गए । उसी समय आचार्य भगवंत ने कहा, ''मुनिवर ! तुम कुशल हो न ! तुम्हारी विहार-यात्रा कुशलता पूर्वक चल रही है न ? तुम्हारे गुरुदेव सकुशल हैं न ? इस बार अचानक अवंती में आने का विशेष प्रयोजन ?''

''हे भगवन् ! आपश्री ने पहले ही मेरी कुशलता पूछी...यह सब आपश्री का प्रसाद है । आपश्री की असीम कृपा से कुशल मंगल है । पूज्यपाद गुरुदेवश्री भी सकुशल हैं और उन्होंने दशपूर्वों के अध्ययन के लिए मुझे आपश्री के पास भेजा है ।''

वज्रमुनि की यह बात सुनकर आचार्य भगवंत एकदम खुश हो गए...और उन्होंने शुभदिन शुभमुहूर्त में ज्ञानदान प्रारंभ किया । वज्रमुनि विनयपूर्वक अध्ययन करने लगे...इसके परिणामस्वरूप अल्पकाल में ही वे वज्रमुनि दशपूर्वों के ज्ञाता बन गए ।

तत्पश्चात् भद्रगुप्तसूरिजी म. की अनुज्ञा लेकर वज्रमुनि ने दशपुर नगर की ओर प्रयाण प्रारंभ किया । क्रमशः आगे बढ़ते हुए वज्रमुनि दशपुर नगर में पहुँचे । वहाँ पर पूर्व भव के मित्र जृंभक देवता ने मिलकर वज्रमुनि के दशपूर्व की ज्ञानप्राप्ति का भव्य महोत्सव किया । गुरुदेव ने योग्य जानकर उन्हें आचार्यपद पर प्रतिष्ठित किया । तत्पश्चात् सिंहगिरि गुरुदेव ने अनशन-व्रत स्वीकार किया और अत्यंत ही समाधिपूर्वक कालधर्म प्राप्त कर स्वर्ग में गए ।

शत्रुंजय का तेरहवां उद्धार

विक्रम संवत् 108में वज्रस्वामी की निश्रा में जावडशा ने शत्रुंजय महातीर्थ का तेरहवाँ उद्धार कराया था ।

सौराष्ट्र देश !

मधुमती नगरी (आज का महुवा गाँव) में अत्यंत ही धर्म परायण और धर्म श्रद्धालु भावडशा सेठ रहते थे । उनकी धर्मपत्नी का नाम **भावलादेवी** था । राजदरबार में सेठ का खूब मान सन्मान था । लक्ष्मीदेवी की पूरी महेर थी । आनंद और उत्साह के साथ उनके दिन व्यतीत हो रहे थे ।

परन्तु जीवन में एक अमंगल घडी का आगमन हुआ और लक्ष्मीदेवी ने घर में से विदाई ली । कुछ ही समय में सारी स्थिति बदल गई । भावडशा एकदम निर्धन हो गए । ऐसी स्थिति में भी भावडशा ने अपना धर्म नहीं खोया । उनका सत्त्व वैसा ही बना रहा । धर्मतत्त्व के प्रति उनके अन्तर्मन में जो श्रद्धा और आस्था थी, उसमें लेश भी कमी नहीं आई । त्रिकाल प्रभु पूजा और उभयकाल प्रतिक्रमण आदि आवश्यक क्रियाएँ वे उतने ही उत्साह और उल्लास के साथ करने लगे । धन गया लेकिन उन्होनें धर्म को जाने नहीं दिया ।

एक दिन दो महात्मा विहार करते हुए मधुमती पधारें । वे दोनों महात्मा भिक्षा के लिए भावडशा के घर आए । भावडशा की धर्मपत्नी भावलादेवी ने खुब आदर-बहुमान के साथ महात्मा को गोचरी बहोराई । गोचरी बहोराने के बाद भावलादेवी ने महात्मा को पूछ लिया 'हे प्रभो ! मेरे घर में लक्ष्मीदेवी का पुनरागमन कब होगा ?'

यद्यपि इस प्रकार के प्रश्न साधु भगवंतों को पूछना उचित नहीं है...और कदाचित् अज्ञानतादि के कारण किसी श्रावक ने पूछ लिया हो तो भी निर्ग्रंथ गुरु भगवंत उसका कोई जवाब नहीं देते है अथवा जवाब टाल देते है । परंतु इसमें भी एक अपवाद हैं...गीतार्थ गुरु भगवंत भावी लाभालाभ को देखकर उसका समुचित जवाब दे सकते हैं ।

प्रश्न को सुनकर गीतार्थ मुनिवर ने भावलादेवी को जवाब देते हुए कहा, 'आज कोई व्यक्ति घोड़ी बेचने के लिए आए तो तुम वह घोड़ी खरीद लेना...उस घोड़ी के आगमन के बाद तुम्हारे घर में धन की अभिवृद्धि होगी !'

पूज्य गुरु भगवंत जानते थे कि इसी के पुत्र के हाथों से जैन शासन के पवित्र शत्रुंजय महातीर्थ का जीर्णोद्धार होनेवाला है । इसीलिए आगे चलकर बोले, **'धन की प्राप्ति के साथ तुम्हें पुत्र-प्राप्ति होगी और वो ही पुत्र शत्रुंजय महातीर्थ का जीर्णोद्धार करेगा ।'**

इतना कहकर मुनि भगवंत वहां से चले गए । उपकारी गुरू भगवंत के श्रीमुख से अपने भावी शुभ को जानकर भावडशा और भावलादेवी ने उसी समय सुकन की गांठ बांध ली ।

भोजन के बाद भावडशा बाजार में गए । वहां पर उन्होंने कामधेनु के समान सुकनवंती घोडी को देखा । घोड़ी को देखते ही भावडशा को मुनि का वचन याद आ गया । यद्यपि उसके पास कोई विशेष संपत्ति नहीं थी, फिर भी कुछ उधार रकम लेकर भावड़ाशा ने वह घोड़ी खरीद ली । कुछ समय व्यतीत होने के बाद उस घोड़ी ने एक अश्वरत्न को जन्म दिया । वह घोड़ा जब तीन वर्ष का हुआ, तब तपन राजा ने तीन लाख रुपए देकर वह घोड़ा खरीद लिया । सेठ की गरीबी दूर हो गई । उनके अन्तर्मन में धर्म श्रद्धा खूब बढ़ गई ।

उस धन से सेठ ने दूसरी घोड़ियाँ खरीदी । इसके फलस्वरुप उसके पास 108 अश्वरत्न तैयार हो गए ।

भावडशा ने एक शुभ दिन वे सारे घोड़े विक्रमराजा को भेंट दिए । उन घोड़ों को देखकर राजा खुश हो गया । प्रसन्न होकर उसने भावडशा को महुवा (मधुमती) सहित बारह गांव भेंट दिए ।

भावडशा ने मधुमती नगरी में प्रवेश किया और उसी शुभदिन शुभ मुहूर्त में भावला देवी ने पुत्ररत्न को जन्म दिया । देवतुल्य उस पुत्र का जावडशा नाम रखा गया ।

दूज के चांद की तरह वह जावडशा दिन दुना और रात चौगुना बढ़ने लगा । देखते ही देखते उसने यौवन के प्रांगण में प्रवेश किया । शस्त्र व शास्त्रकला में वह निपूण बन गया । एक शुभ दिन अत्यंत ही रूपवान् और गुणवान् सुशीला नाम की कन्या के साथ उसका पाणिग्रहण हुआ ।

इधर एक दिन अत्यंत ही समाधिपूर्वक भावडशा ने इस दुनिया से चिर विदाई ली । परिवार की समस्त जवाबदारी जावडशा के कंधों पर आ गई । नेक और ईमानदारी के साथ जावडशा अपनी जवाबदारियों को वहन करने लगे । **पिता की याद में जावडशा ने मधुमती में एक नूतन जिनमंदिर का निर्माण कराया ।**

दुषमकाल के प्रभाव से मुगल लोगों का भारत में आगमन हुआ। सौराष्ट्र आदि देशों पर आक्रमण कर वे अपार धन संपत्ति व स्त्री-पुरुषों का अपहरण कर उन्हें अपने देश में ले जाने लगे। दुर्भाग्य से जावडशा उन यवनों के जाल में फंस गया। वे यवन जावडशा को अपने देश ले गए। बुद्धि, बल और अपनी होशियारी से जावडशा मुगलों की कैद में से मुक्त हो गया और बादशाह का सलाहकार बन गया। वहां पर भी उसने महावीर प्रभु के चैत्य का निर्माण कराया!

कुछ समय बाद उस यवनदेश में जैन मुनियों का आगमन हुआ। उन मुनियों ने शत्रुंजय महातीर्थ की महिमा का गान किया और कहा कि इस पंचमकाल में जावडशा इस तीर्थ का उद्धार करेगा।

मुनियों के मुख से शत्रुंजय महातीर्थ के उद्धारक के रूप में अपना नाम सुनकर जावडशा ने पूछा, 'क्या वह जावड मैं ही हूँ या अन्य कोई होगा?'

मुनियों ने कहा, **'पुंडरीक गिरि के अधिष्ठायक हिंसक बन गए है। पचास योजन के क्षेत्र को उज्जड बना दिया है। यदि कोई व्यक्ति उस हद में प्रवेश करता हैं तो मिथ्यात्वी बना कपर्दी यक्ष उसे मार डालता है। युगादिदेव की प्रतिमा भी अपूज रह गई हैं अतः ऐसी विकट परिस्थिति में इस तीर्थ के उद्धार का लाभ आपको प्राप्त हो रहा है। चक्रेश्वरी देवी को प्रसन्न कर आदिनाथ प्रभु के बिंब को प्राप्त कर लो।'**

मुनियों के मुख से इन बातों को सुनकर जावडशा का हृदय हर्ष और शोक की मिश्रित अनुभूति करने लगा। शत्रुंजय महातीर्थ की हुई दुर्दशा का उसके मन में अत्यंत ही खेद था तो दूसरी ओर उस तीर्थ के उद्धार का परम सौभाग्य उसे प्राप्त होनेवाला है, इस बात की उसे खुशी भी थी। जावडशा जागृत हो गए। अपने परिवार के साथ वे मधुमती लौट आए। यहां आने के बाद उन्होंने चक्रेश्वरी देवी का ध्यान प्रारंभ किया।

एक मास के उपवास के बाद प्रकाश पुंज फैलाती हुई चक्रेश्वरी देवी प्रगट हुई और बोली, **'वत्स! तेरे सत्त्व को धन्यवाद है। तक्षशिला नगरी में जाकर वहां के राजा जगन्मल्ल को बात करना। बाहुबली के द्वारा निर्मित धर्मचक्र के आगे रहे जिनबिंब को तुम देख सकोगे। वह बिंब अत्यंत ही चमत्कारी है।'** इतना कहकर देवी अदृश्य हो गई।

देवी के आदेश एवं सहायता के वचन को प्राप्तकर जावडशा तक्षशिला में गए और वहां के राजा जगन्मल्ल को भेंट धरकर मधुर वचनों से प्रसन्न किया। धर्मचक्र में से ऋषभदेव प्रभु की प्रतिमा लेकर आए। बीच मार्ग में मिथ्यादृष्टि देवताओं ने अनेक उपद्रव किए। परंतु सत्त्वशाली जावडशा उन उपद्रवों से लेश भी परास्त नहीं हुए। इस प्रकार क्रमशः आगे बढ़ते हुए एक शुभ दिन रथ में आकर आदिनाथ प्रभु की प्रतिमा के साथ मधुमती में प्रवेश किया!

कुछ समय पूर्व जावडशा ने व्यापार के लिए अपने सामूहिक वाहन चीन आदि देशों में भेजे थें, परंतु वायु अनुकूल नहीं होने के कारण वे वाहन सुवर्ण द्वीप में चले गए थें, वहां से अपार सुवर्ण संपत्ति से भरे हुए वे वाहन उसी दिन समुद्र तट पर आ गए!

प्रभुजी के नगर प्रवेश के शुभ दिन जावडशा को एक साथ दो समाचार मिले-

(1) उद्यानपाल ने आकर समाचार दिए कि पूज्यपाद वज्रस्वामीजी अपने शिष्यवृंद के साथ नगर बाहर पधारे हैं।

(2) समुद्रतट से आकर एक भाई ने समाचार दिए कि आपके सभी वाहन अमाप सुवर्ण लेकर सुरक्षित रूप से वापस लौट आए है ।

एक क्षण के लिए तो जावडशा भी विचार मग्न हो गए-**'मैं पहले कहां जाऊं ? आए हुए सुवर्ण को पाने के लिए समुद्र तट पर जाऊं या पूज्य गुरुदेव के दर्शन-वंदन के लिए नगर बाहर जाऊं ?'**

एक ओर लौकिक नश्वर धन-संपत्ति-दूसरी और लोकोत्तर गुण-संपत्ति ! आखिर सोचते हुए जावडशा ने निर्णय लिया कि मैं पहले गुरुदेव के पास ही जाऊंगा, **'क्योंकि बाह्य धन-संपत्ति का योग तो आत्मा के लिए घातक भी सिद्ध हो सकता हैं, जबकि लोकोत्तर ऐसे संत महात्मा का मिलन तो एकांततः आत्मोद्धार के लिए होगा ।'** इस प्रकार विचारकर जावडशा अपने विशाल परिवार के साथ नगर बाहर आ गए ।

अपने उपकारी गुरुदेव के दर्शन कर वे अत्यधिक प्रसन्न हुए । उन्होंने अत्यंत ही भावपूर्वक गुरूदेव को वंदना की ।

उसी समय आकाश मार्ग में से एक देव का आगमन हुआ । गुरूदेव के चरणों में भावपूर्वक वंदना करके बोला, 'हे गुरूदेव ! आपके उपकार को मैं कभी भूल नहीं सकता । आपका मुझ पर असीम उपकार है । गत भव में मैं शराब का व्यसनी था, उस समय आपने उपदेश देकर मुझे उस व्यसन से मुक्त किया था...परंतु एकबार शराब की तीव्र आसक्ति के कारण महल के ऊपरी भाग में बैठकर शराब पीने के लिए तैयार हो गया था...उसी समय किसी पक्षी द्वारा भक्षण किए जा रहे सांप का जहर उस शराब में गिरा ! मुझे इसका पता नहीं होने से मैंनें वह शराब पी ली । मुझे सांप का जहर चढ़ने लगा ! मुझे अपनी भूल का ख्याल आ गया । अहो ! मैंने अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दी..मुझे अपने पाप का तीव्र पश्चात्ताप हुआ । पाप के तीव्र पश्चात्ताप और नवकार महामंत्र के स्मरण के फल स्वरूप मैं मरकर यक्ष निकाय में उत्पन्न हुआ । मेरा नाम कपर्दी यक्ष है । मेरे अधीन एक लाख यक्ष है । हे प्रभो ! आप मुझे आज्ञा प्रदान करे, मैं आपकी क्या सेवा करुं ?'

इतना कहकर वह कपर्दी यक्ष वज्रस्वामी के चरणों में बैठ गया ।

उसी समय वज्रस्वामी ने जावडशा को संबोधित करते हुए सिद्धगिरि का माहात्म्य समझाया और कहा, 'हे पुण्यशाली ! तू इस महातीर्थ की यात्रा कर और इस तीर्थ का उद्धार कर ! तेरे इस कार्य में मैं, कपर्दी यक्ष और तेरा भाग्य सहायता करेगा ।'

गुरूदेव के मुख से शत्रुंजय के माहात्म्य को सुनकर जावडशा एकदम खुश हो गए । उनके हृदय में आनंद की सीमा नहीं रही !

गुरूदेव की आज्ञा को शिरोधार्य कर उसने तत्काल सिद्धगिरि की ओर जाने का संकल्प किया और उसकी तैयारी प्रारंभ कर दी ।

संघ प्रयाण के पहले दिन किसी दुष्टदेव ने संघपति की सती स्त्री जयमती के शरीर में ज्वर पैदा किया...परंतु वज्रस्वामीजी की दृष्टि मात्र से वह रोग उपशांत हो गया । उसके बाद ज्यों-ज्यों संघ आगे बढता गया, त्यों-त्यों दुष्ट देवों द्वारा अनेक प्रकार के उपद्रव होने लगे परंतु नवीन कपर्दी यक्ष उन सब उपद्रवों को अपनी शक्ति द्वारा दूर करने लगा । इस प्रकार क्रमशः आगे बढता हुआ

वह संघ आदिपुर पहुँच गया। उस समय किसी दुष्ट देव ने वृक्ष के पत्तों की तरह गिरिराज को कंपित किया ! वज्रस्वामी ने शांति कर्म कर उस गिरिराज को पुनः निश्चल किया !!

पूज्य वज्रस्वामी ने शुभ मुहूर्त प्रदान किया। उस शुभ मुहूर्त में वह संघ जिनप्रतिमा को लेकर क्रमशः गिरिराज पर चढा। मिथ्यात्वी देवों ने अपने उपद्रव चालू रखें ! परंतु नूतन कपर्दी यक्ष ने उन सब उपद्रवों को दूर किया। इस प्रकार संघ गिरिराज के शिखर पर पहुँचा। परंतु दुष्ट देवों ने वहां पर हड्डी, मांस, चर्बी, रक्त, केश आदि बिखेरकर गिरिराज को अपवित्र कर दिया। उस समय जावडशा ने अपने नौकरों को आदेश दिया और शत्रुंजय महानदी से जल मंगवाकर उस गिरिराज को पुनः पवित्र करा दिया।

जावडशा ने गिरिराज पर रहे ध्वस्त बने जिनमंदिरों को देखा। उसे अत्यंत ही खेद हुआ। रात्रि में सारा संघ निद्राधीन हुआ, तभी दुष्ट देव ने उस जिन प्रतिमा को पर्वत पर से नीचे उतार दी ! प्रातःकाल होने पर जैसे ही जावडशा को इस बात का पता चला, उसे अत्यंत ही खेद हुआ।

वज्रस्वामी ने अपने ज्ञान का उपयोग लगाया और कहा कि यह प्रतिमा नीचे उतार दी गई है। जावडशा पुनः उस प्रतिमा को ऊपर ले आए। रात्रि में उस मिथ्यात्वी देव ने उस प्रतिमा को पुनः नीचे ला दी ! दिन में वह प्रतिमा शत्रुंजय के शिखर पर और रात्रि में वह प्रतिमा नीचे आ जाती थी ! इस प्रकार इक्कीस दिन तक यह क्रम चलता रहा।

उसके बाद वज्रस्वामी ने रात्रि में जावडशा और कपर्दी यक्ष को बुलाकर कहा, **'हे कपर्दी ! तू शक्तिमान हैं तो अब अपनी शक्ति का प्रयोग बता !'**

उसके बाद जावडशा को कहा, 'हे जावड ! तेरे दिल में आदिनाथ प्रभु के प्रति अपूर्व भक्ति है। अतः तुम अपनी धर्मपत्नी सुशीलादेवी के साथ रथ के पहियों के नीचे सो जाओ। वे मिथ्यात्वी देव समर्थ होने पर भी तुम्हारे इस पराक्रम के आगे टिक नहीं सकेंगें। उस समय सारा संघ मेरे साथ कायोत्सर्ग ध्यान में रहेगा।'

गुरू भगवंत के मुख से इन वचनों को सुनकर जावडशा तुरंत तैयार हो गया।

दूसरे दिन आदिनाथ प्रभु की प्रतिमा को ऊपर चढाने के बाद जावडशा और उसकी पत्नी रथ के पहियों के नीचे सो गए। वज्रस्वामी और सारा संघ कायोत्सर्ग ध्यान में स्थिर हो गया।

रात्रि के समय में दुष्ट देवों ने भयंकर उपद्रव चालू किए। परंतु उनका कुछ भी नहीं चला। आखिर जावडशा की जीत हुई।

प्रातःकाल होने पर उस प्रतिमा को पर्वत के शिखर पर ही सभी ने देखा। सभी के उत्साह-उल्लास का पार नहीं था।

मंगल वाद्य यंत्रों के साथ उस प्रतिमा को जिनमंदिर में प्रवेश कराया गया। मंदिर में रही सभी अशुद्धि आशातनाओं को दूर किया गया।

उस समय पहले के मिथ्यात्वी कपर्दी यक्ष ने भयंकर उपद्रव मचाना चालू किया। नए कपर्दी यक्ष ने उसका प्रतिकार किया। **आखिर वह पुराना कपर्दी यक्ष वहां से भाग गया और सौराष्ट्र के दक्षिण समुद्र किनारे पर चंद्र-प्रभास तीर्थ में चला गया और वहां उसने दूसरा नाम धारण किया।**

इधर नूतन जिनबिंब की खूब उत्साह के साथ प्रतिष्ठा विधि संपन्न हुई।

उस समय मंदिर की ध्वजा चढाने के लिए जावडशा अपनी पत्नी के साथ मंदिर के शिखर पर चढे। मंदिर की ध्वजा चढाने के बाद जावडशा सोचने लगे, **'अहो ! आज मेरा कैसा अहोभाग्य ! इस तीर्थ के जीर्णोद्धार का लाभ मुझे प्राप्त हुआ। मेरा जन्म सफल हो गया। कपर्दी यक्ष ने मुझे सहायता की। वज्रस्वामी जैसे महान् गुरुदेव प्राप्त हुए ! अब मैं संसार का त्याग कर जिनेश्वर के ध्यान में लीन बनकर सर्व कर्मों को खपा दूँ !'** इस प्रकार जावडशा और उसकी पत्नी शुभ ध्यान की धारा में लीन बने हुए थे। तभी उनका हृदय बंद हो गया। उनका आयुष्य वहीं समाप्त हो गया। वे समाधि मृत्यु प्राप्त कर चौथे देवलोक में देव बने। उसी समय तीर्थ के रक्षक उत्तम देवताओं ने उन दोनों के मृतदेह को उठाकर क्षीर सागर में डाल दिया !

इधर जावडशा के पुत्र जाजनाग ने जब अपने माता-पिता को नहीं देखा तो उसे अत्यंत ही खेद हुआ। उसके बाद चक्रेश्वरी देवी ने मधुर वचनों से उसे शांत किया और तीर्थ भक्ति के प्रभाव से तुम्हारे माता-पिता समाधि मृत्यु को प्राप्तकर चौथे देवलोक में देव बने हैं, इत्यादि बातें कही ! जाजनाग का शोक दूर हुआ। उसके बाद जाजनाग संघ लेकर गिरनार पर्वत पर गया।

इस प्रकार विक्रम संवत् 108 में जावडशा ने शत्रुंजय महातीर्थ का 13वाँ उद्धार किया।

रुक्मिणी को प्रतिबोध

पृथ्वीतल पर विचरते हुए वज्र स्वामी अपनी प्रवचन लब्धि से भव्य जीवों को प्रतिबोध देने लगे। 500 शिष्यों के गुरू पद पर प्रतिष्ठित वज्रस्वामी आचार्य भगवंत जहाँ भी जाते, वहाँ अद्भुत शासन प्रभावना होती। अनेक भव्यात्माएँ देशविरति और सर्वविरति धर्म को स्वीकार करती थीं।

इधर पाटलीपुत्रनगर में धन-धान्य से समृद्ध एक सेठ रहता था, उस सेठ की पुत्री का नाम **रुक्मिणी** था। उस नगर में वज्रस्वामी की साध्वियाँ श्राविकाओं के आगे धर्मोपदेश देती थी ! धर्मोपदेश के अन्तर्गत वे वज्रस्वामी के रूप, लावण्य, सौभाग्य आदि गुणों का वर्णन करती थीं। वज्रस्वामी के रूप-लावण्य आदि गुणों को सुनकर उस रुक्मिणी ने निश्चय कर लिया कि इस जीवन में वज्रस्वामी के साथ ही विवाह करना है।

रुक्मिणी के इस संकल्प को जानकर साध्वीजी भगवंत ने उसे समझाते हुए कहा, ''रुक्मिणी ! तुम्हारा यह संकल्प उचित नहीं है। जैन मुनि तो स्त्री के सर्वथा त्यागी होते हैं। उनके साथ पाणि-ग्रहण करने का तेरा संकल्प कभी भी साकार नहीं हो सकेगा।''

रुक्मिणी ने कहा, ''मैं अपना प्रयत्न करूंगी। प्रयत्न करने पर भी सफलता नहीं मिली तो मैं भी दीक्षा अंगीकार कर लूंगी।''

वज्रस्वामी अपने विशाल परिवार के साथ विहार करते हुए पाटलीपुत्र नगर में पधारे। वहाँ के राजा ने भव्य महोत्सव पूर्वक आचार्य भगवंत का नगर- प्रवेश कराया।

अनेक साधुओं के रूप में समानता होने से राजा वज्रस्वामी को पहिचान नहीं पाया। अन्य साधुओं के द्वारा वज्रस्वामी का परिचय प्राप्त होने पर राजा ने अत्यंत ही भावपूर्वक वज्रस्वामी को वंदन-प्रणाम किया। तत्पश्चात् वैराग्यपूर्ण धर्मदेशना सुनी।

वज्रस्वामी के आगमन को सुनकर रुक्मिणी ने लज्जा का परित्याग कर अपने पिता को कहा, **''मैं इस जीवन में एक मात्र वज्र के साथ ही लग्न करना चाहती हूँ, यदि मेरी इच्छा पूर्ण नहीं होगी तो मैं मृत्यु को वर लूंगी ।''**

पुत्री की यह बात सुनकर धनावह श्रेष्ठी, दिव्य आभरणों व अलंकारों से अलंकृत अपनी पुत्री को लेकर वज्रस्वामी के पास आया । लोक-मुख से वज्रस्वामी के अद्भुत रूप, लावण्य आदि गुणों का वर्णन सुनकर धनावह-श्रेष्ठी अत्यंत खुश हो गया और सोचने लगा, ''अहो ! मेरी पुत्री धन्य है जो इस प्रकार के श्रेष्ठ व रूपवान् वर को वरना चाहती है ।''

तत्पश्चात् धनावह श्रेष्ठी ने वज्रस्वामी को वंदन-नमस्कार किया...और धर्मोपदेश सुनने के बाद वह हाथ जोड़कर विनती करते हुए बोला, ''मेरी यह पुत्री आप में आसक्त है, अतः इसके साथ पाणि-ग्रहण कर मुझे कृतार्थ करें । इस कन्या के पाणि-ग्रहण के प्रसंग में मैं एक करोड़ सुवर्ण प्रदान करूंगा ।''

धनावह सेठ के इन शब्दों को सुनकर वज्रस्वामी ने कहा, ***''संसार के भोग-सुख तो नदी के जलतरंग तथा हाथी के कान की भाँति अत्यंत ही चपल हैं । संसार के भोग-सुख तो पुण्य रूपी लक्ष्मी में राग पैदा करानेवाले हैं । स्त्री और लक्ष्मी का दान खूब सोच-विचार करके देना चाहिए । मेरा शरीर तो हाड़-मांस-रुधिर व चर्बी आदि से पूरा-पूरा भरा हुआ है उसमें आसक्त होना तो सिर्फ मूर्खता है ।***

''यदि तुम्हारी पुत्री योग्य वर को वरना चाहती है तो वह संयम रूपी वर के साथ पाणिग्रहण करे, जो देवों को भी दुर्लभ है और जिसके आगे सभी सद्गुण किंकर समान हैं । रूप और लक्ष्मी भी जिसकी दासी है...सभी क्रियाएँ भी जिसके आगे तुच्छ हैं । जिसमें किसी प्रकार का दूषण नहीं है...और जिसकी भक्ति से मोक्ष भी सुलभता से प्राप्त हो सकता है ।''

''इस संसार में जीवन के साथ मृत्यु का भय जुड़ा हुआ है-यौवन के साथ वृद्धावस्था का भय लगा हुआ है । देह के सौंदर्य के साथ रोग का भय जुड़ा हुआ है । अंजलि में रहा जल जिस प्रकार प्रतिक्षण कम होता जाता है...उसी प्रकार अपना आयुष्य भी प्रतिक्षण नष्ट होता जाता है ।''

वज्रस्वामी के वैराग्य सभर उपदेशों को सुनकर रुक्मिणी का मोह रूपी ज्वर शांत हो गया और लग्न के लिए आई हुई रुक्मिणी ने भागवती दीक्षा स्वीकार कर ली । वज्रस्वामी की वाणी सुनकर अनेक भव्यात्माएँ भी जिनधर्म के प्रति आदर वाली बनीं ।

संघरक्षा

वज्रस्वामी ने **आचारांग सूत्र** के **महापरिज्ञा अध्ययन** में से आकाशगामिनी विद्या का उद्धार किया ।...परन्तु भविष्य में सभी प्राणी अल्प सत्त्ववाले होंगे, यह जानकर उन्होंने वह विद्या किसी साधु को प्रदान नहीं की ।

एक बार वज्रस्वामी विहार करते हुए उत्तर दिशा की ओर आगे बढ़े । वहाँ पर भयंकर अकाल पड़ा था । भयंकर दुष्काल के कारण संघ की स्थिति अत्यंत ही दयनीय थी ।

संघ ने वज्रस्वामी को विनती करते हुए कहा, ''दुष्काल के कारण हमारी स्थिति अत्यंत ही खराब है। दुष्काल के साम्राज्य में पुनः पुनः भोजन करने पर भी तृप्ति नहीं होती है। भिक्षुओं के भय से श्रेष्ठीजन भी अपना द्वार नहीं खोलते हैं। क्रय-विक्रय का व्यवहार भी दुर्लभ हो गया है। विहार करके आए हुए साधुओं के लिए शुद्ध अन्न की प्राप्ति दुर्लभ हो गई है। इस संघ का उद्धार करने में आप ही समर्थ हो।''

संघ की इस दयनीय स्थिति का वर्णन सुनकर वज्रस्वामी ने सोचा, ''**सामर्थ्य होने पर भी यदि संघ का रक्षण न किया जाय तो वह व्यक्ति दुर्गतिगामी बनता है, यह संघ तो तीर्थंकरों को भी पूज्य है।**'' इस प्रकार विचार कर वज्रस्वामी ने अपनी लब्धि के बल से चक्रवर्ती के चर्मरत्न की भाँति एक लंबा पट्ट बिछाया और उस पर पूरे संघ को उठाकर आकाशगामिनी विद्या के बल से आकाश में उड़ने लगे। इसी बीच कोई शय्यातर किसी काम के लिए अन्यत्र गया हुआ था। वापस लौटते समय वज्रस्वामी को संघ के साथ उड़ते हुए देखकर वह बोला, ''हे प्रभो! मैं आपका शय्यातर था...अभी हम साधर्मिक हैं तो मुझे ऐसे स्थान में अकेले छोड़कर क्यों जाते हो?''

इस प्रकार शय्यातर की इस बात को सुनकर वज्रस्वामी ने सूत्रार्थ का स्मरण किया... ''**जो साधर्मिक; स्वाध्याय, चारित्र व धर्म की प्रभावना में तत्पर हों उन्हें मुनि अवश्य तारें।**'' आगम के इस पाठ को याद कर वज्रस्वामी ने उस श्रावक को भी अपने विद्या पट्ट में ले लिया। उसके बाद वज्रस्वामी सकलसंघ के साथ सुकाल प्रदेश की ओर आगे बढ़ने लगे।

उस पट्ट को लेकर वज्रस्वामी महापुरी नगरी में पधारे...जहाँ सुकाल होने से संघ के सभी सदस्य सुखी बनें।

शासन प्रभावना

महापुरी नगरी का राजा और वहाँ की प्रजा बौद्धधर्मी थीं। इस कारण जैन और बौद्धों के बीच में परस्पर वाद होता रहता था। जब पर्युषण महापर्व आए, तब प्रजाजनों ने जाकर राजा को निवेदन किया, ''हे राजन्! जैनों का वार्षिक पर्व आया हुआ है, अतः आप माली लोगों के पास से सभी फूल अपने मंदिरों में मंगवा दें। जैनों को फूल नहीं मिलने से उनका अभिमान दूर हो जाएगा।''

प्रजाजनों की यह बात सुनकर राजा ने सभी मालियों को यह आज्ञा कर दी। परिणामस्वरूप जैनों को प्रभु भक्ति के लिए कुछ भी फूल नहीं मिल पाए।

लोगों ने जाकर वज्रस्वामी को बात करते हुए कहा, ''**तीर्थ की उन्नति के लिए साधु भी हमेशा प्रयत्नशील होते हैं, अतः आपको भी शासन की उन्नति के लिए कुछ प्रयत्न करना चाहिए।**''

लोगों की यह बात सुनकर आकाशगामिनी विद्या के बल से वज्रस्वामी माहेश्वरी वन में गए। उस वन में धनगिरि का मित्र तड़ित् नाम का माली था। वज्रस्वामी के आगमन को देखकर वह खुश हो गया और बोला, ''आपके दर्शन कर आज मैं कृत-कृत्य हो गया हूँ...मेरे योग्य सेवा कार्य फरमाएँ।''

वज्रस्वामी ने कहा, ''कल हमारा वार्षिक पर्व है, अतः उसके लिए महापुरी नगरी में प्रभु-भक्ति के लिए पुष्प चाहिए।'' यह सुनकर उस माली ने 20 लाख पुष्प प्रदान किए। उन्हें लेकर वे लघु हिमवंत पर्वत पर गए और वहाँ शाश्वत जिन प्रतिमाओं को वंदन कर वहाँ के देवता के पास

से तथा बीच मार्ग में हुताशन यक्ष के वन देवता के पास से फूल लिये । इन सब फूलों को लेकर वे महापुरी नगरी में पधारे और वहाँ पर भव्यातिभव्य प्रभु भक्ति का महोत्सव किया ।

वज्रस्वामी के इस प्रभाव को देखकर बौद्धराजा भी अत्यंत ही प्रभावित हुआ । राजा, प्रजाजनों ने जैन धर्म को स्वीकार किया । जैन शासन की अद्‌भुत प्रभावना हुई ।

अनशन स्वीकार

अपने चरण कमलों से पृथ्वीतल को पावन करते हुए वज्रस्वामी अपने उपदेश द्वारा अनेक भव्यजीवों पर उपकार करने लगे । वे वज्रस्वामी क्रमशः विहार करते हुए दक्षिण पथ में पधारे । वहाँ एक बार उन्हें श्लेष्म की तकलीफ हुई । शिष्यों के आग्रह से उन्होंने सूंठ का टुकडा लिया और उसे कान पर रख दिया । वे औषध के रूप में सूंठ का टुकड़ा वापरना भूल गए । प्रतिक्रमण समय मुहपत्ति की प्रतिलेखना करते समय जब वह सूंठ का टुकड़ा नीचे गिरा-तब वे सोचने लगे, ''अहो ! लगता है अब मेरा आयुष्य स्वल्प ही है ।''

अपने आयुष्य की अल्पता जानकर वज्रस्वामी ने अनशन करने का निश्चय किया ।

उस समय 12 वर्ष का भयंकर अकाल पड़ा । वज्रस्वामी ने अपने शिष्य वज्रसेन आदि को अन्यत्र विहार की आज्ञा दी । भयंकर दुष्काल के कारण भिक्षा की दुर्लभता देखकर वज्रसेन मुनि ने कहा, ''मैं विद्या के बल से (विद्या पिंड) भिक्षा लाकर तुम्हारा पोषण करूँगा और यदि विद्यापिंड पसंद न हो तो अनशन व्रत स्वीकार करना चाहिए ।'' वज्रसेन मुनि की यह बात सुनकर सभी 500 शिष्य भी अनशन व्रत स्वीकार करने के लिए तैयार हो गए ।

एक छोटे से बालमुनि को किसी बहाने से छोड़कर वज्रस्वामी अपने 500 शिष्यों के साथ पर्वत पर चढ़ने लगे । उस समय बालमुनि ने सोचा, ''यदि मैं भी पर्वत पर चढूंगा तो अपने गुरूदेव को अप्रीति होगी'', इस प्रकार विचार कर पर्वत के निम्न भाग में ही बालमुनि ने चारों प्रकार के आहार का त्याग कर अनशन व्रत स्वीकार कर लिया । मक्खन के पिंड की तरह बालमुनि का कोमल देह गल गया और समाधि मृत्यु प्राप्त कर वे देवलोक में चले गए । बालमुनि के अपूर्व सत्त्व से प्रसन्न हुए देवताओं ने आकर उनका महोत्सव किया ।

जब अन्य मुनियों को बालमुनि के अद्‌भुत पराक्रम का पता चला तो वे और भी अधिक वैराग्य वाले हुए और सभी ने अनशन व्रत स्वीकार लिया ।

वज्रस्वामी को चलित करने के लिए किसी मिथ्यादृष्टि देवी ने आकर उपसर्ग करने प्रारंभ किए । परन्तु वज्रस्वामी लेश भी चलित नहीं हुए । आखिर देवी की अप्रीति को जानकर वज्रस्वामी अन्य स्थान पर गये और वहाँ पर क्षेत्रदेवता का कायोत्सर्ग कर अनशन कर लिया । अत्यंत ही समाधिपूर्वक कालधर्म प्राप्त कर वे स्वर्ग में गए । इन्द्र ने आकर उस स्थान पर तीर्थ की स्थापना की ।

वज्रस्वामी के स्वर्गगमन के बाद सौधर्मइन्द्र ने आकर रथ में बैठकर उस पर्वत को प्रदक्षिणा दी, उसके बाद वह पर्वत रथावर्तगिरि के नाम से प्रख्यात हुआ । पंचमंगल महाश्रुत स्कंध जो स्वतंत्र आगम के रूप में था, उसे वज्रस्वामी ने मूलसूत्र के साथ जोड़ दिया ।

वज्रस्वामी के स्वर्ग गमन के बाद दसवें पूर्व, चौथे संघयण और संस्थान काविच्छेद हो गया ।